International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 29-08-2021, Accepted: 15-09-2021, Published: 30-09-2021
Volume 3, Issue 3, 2021, Page No. 51-52

जनसंचार और समाज–व्यवस्था

अर्चना शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय वैश्विक संदर्भ में अत्याधुनिक जनसंचार माध्यमों की उपयोगिता एवं महत्त्व पर प्रकाश डालना है । वर्तमान समय में जनसंचार माध्यमों के दैनिक प्रयोग एवं सुगम व्यवस्था की दृष्टि से संरचनात्मक ढाँचे को शोध–आलेख के माध्यम से आलोकित करना ही मुख्य उद्देश्य रहा है ।

मूल शब्दः जनसंचार (Mass Communication), दूरसंचार (Telecommunication), शब्द संचार, श्रव्य संचार, दृश्य संचार

प्रस्तावना

मनुष्य की एक–दूसरे से विचार–विनिमय की प्रवृत्ति से संचार प्रणाली की शुरुआत हुई। देखा जाए तो व्यापक अर्थों में जनसंचार भी संचार ही है। समय के साथ–साथ आधुनिक ज्ञान–विज्ञान और औद्योगिक विकास के फलस्वरूप हमारी संचार प्रणाली में न केवल तकनीकी गहनता और विस्तार आया बल्कि इसकी दो धाराएँ मुख्य रूप से सामने आईरू–

दूरसंचार (Telecommunication) और जनसंचार (Mass Communication) जनसंचार माध्यम को हम तीन भागों में विभाजित करते हैं:

1. शब्द संचार माध्यम: समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें
2. श्रव्य संचार माध्यम: रेडियो, कैसेट, टेपरिकॉर्डर
3. दृश्य संचार माध्यम: दूरदर्शन, वीडियो, कम्प्यूटर, फिल्में, इंटरनेट आदि

"हिंदी जहाँ विस्तार में सार्वभौमिक हो रही है वहीं उसका लेखन भी बहुआयामी बन रहा है ।" जनसंचार माध्यमों को सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन, आर्थिक विकास एवं राजनीतिक बदलाव की प्रक्रिया में धुरीय तत्त्व के रूप में देखा जा सकता है। इसलिए विकासशील देश जन–अभियान और संचार–प्रणाली की बात अधिक करते हैं। विकासशील देशों में आयोजक अपने विशिष्ट लक्ष्यों और प्राथमिकताओं के विषय में इनका प्रयोग करते रहे हैं। स्कूलों एवं अन्य संस्थानों में औपचारिक शिक्षा में प्रयोग के अतिरिक्त कृषि, स्वास्थ्य और साक्षरता संवर्धन जैसे अनेक अभियानों में भी जनसंचार प्रणाली को प्रभावी ढंग से संचालित किया जाता है।

जनसंचार माध्यमों का संबंध सामाजिक परिवर्तन से बहुत गहरा है।विद्वानों के अनुसार दृ"संचार की प्रक्रिया तब पूर्ण होती है जब सूचना एक स्थान से दुसरे स्थान तक पहुंचाई जाती है ।" इस संदर्भ में ये बातचीत तभी सार्थक हो सकती है जब हम उसके सामाजिक संदर्भों को हर समय ध्यान रखें। जहाँ एक ओर जनसंचार का विकास समाज के विकास का परिणाम है, वहीं वह सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है। लेकिन समाज और जनसंचार के बीच संबंधों की इस आधारभूत धारणा को सरलीकृत रूप में नहीं समझा जा सकता। जनसंचार के अलग–अलग रूपों का प्रभाव समाज के अलग–अलग वर्गों पर एक–सा नहीं पड़ता। जब समाचार–पत्रों का आरंभ नहीं हुआ था तब सूचनाओं के लिए लोगों के पास ऐसा कोई साधन नहीं था जिससे वे प्रत्येक सूचना को उपलब्ध कर सके। परिणामतः सूचनाएँ समाज के शक्तिशाली वर्ग तक ही सीमित थी किंतु जब प्रेस का आगमन हुआ और किताबें बड़ी संख्या में छपने लगी तब वह ज्ञान जो लिखित रूप में मौजूद था समाज के बड़े हिस्से तक पहुँच सका। स्पष्ट है 'जानने के अधिकार का' प्रेस के आगमन से जो संबंध है उसे इसी संदर्भ में समझा जा सकता है। इसी तरह प्रिंट टेक्नोलॉजी ने ज्ञान को समाज के किसी खा़स वर्ग की बपौती नहीं रहने दिया है बल्कि उसे आम लोगों तक पहुँचाया है। यह ज्ञान के क्षेत्र में जनवादी मूल्यों का प्रवेश है।

लेकिन यह समझना भूल होगी कि उससे समाज के ढाँचे में सकारात्मक परिवर्तन का आधार तैयार हो गया है। देश में आजादी के पचास साल बाद भी स्थिति में बुनियादी बदलाव नहीं हुआ है। देश की आधी आबादी निरक्षर है उसके लिए मुद्रण क्षेत्र में कितनी भी बड़ी क्रांति क्यों न हुई हो व्यर्थ है। वह तो शिक्षा जैसी बुनियादी जरूरत से भी वंचित है।

जनसंचार माध्यमों के संदर्भ में बात सिर्फ संप्रेषण तक सीमित नहीं है। वह किस तरह के संप्रेषण, किसके लिए संप्रेषण और किसलिए संप्रेषण, सभी से जुड़ा है। इसलिए जनसंचार माध्यमों के संदर्भ में वर्चस्व का मसला भी अहम् बनकर उभरता है।

सिनेमा एक ऐसा माध्यम है जिसका आस्वादन दर्शक सिनेमाघरों में जाकर करता रहता है जहाँ कई सौ लोग एक साथ बैठकर फिल्म देखते हैं और वहाँ मौजूद लोग एक–दूसरे से अपरिचित ही रहते हें। लेकिन आज फिल्म देखना का तरीका काफी बदल गया है। अब किसी भी फिल्म को टी०वी० चौनल पर, वीडियो कैसेट, सी.डी. या ओ०टी०टी० के जरिए देखा जा सकता है। रूपर्ट गैबिन के अनुसार दृ"यह फिल्म दिखाने का एक आसान और अत्यंत लचीला तरीका है ।" कम्प्यूटर और इंटरनेट के युग में कोई भी व्यक्ति अपने घर में बैठे हुए अपने निजी कम्प्यूटर पर दुनिया के किसी भी हिस्से से संपर्क कर सकता है, वेबसाइट के जरिए अपनी सूचना लोगों तक पहुँचा सकता है। तात्पर्य यह है कि जनसंचार के इन माध्यमों का उत्पादन जन–उत्पादन के रूप में ही क्यों न हुआ हो, लेकिन उपभोग सामूहिक रूप से हो, यह जरूरी नहीं है। इसलिए जनसंचार के इन माध्यमों में व्यापक उपभोग की संभावना निहित होते हुए भी हर उपभोक्ता दूसरे से अलग और एकल रूप में ही बना रहता है। क्या इस बात का हमारे समाज की गतिशीलता पर कोई असर नहीं पड़ता?

जनसंचार के माध्यमों का प्रभाव इतना व्यापक और जबरदस्त ढंग से दिखाई देता है कि उसकी उपेक्षा करना लगभग नामुमकिन है। टेलीविजन को ही लें। यह ऐसा माध्यम है जो अपनी दृश्य–श्रव्य शक्ति के कारण एक साथ करोड़ों लोगों को प्रभावित

कर सकता है। यह एक मायने में सिनेमा से ज्यादा खतरनाक सिद्ध हो रहा है। इसने दृश्य माध्यम को इतना सुलभ बना दिया है कि किसी कला के आस्वादन के लिए किए जाने वाले प्रयत्न के लिए भी कोई जगह नहीं बची है। जब चाहे बटन दबाएं, टी०वी० ऑन करें और मनपसंद प्रोग्राम देखें। एक चौनल से दूसरे चौनल और दूसरे चौनल से तीसरे चौनल। चौनलों के अम्बार में यह तय करना मुश्किल हो रहा है कि क्या देखें और क्या न देखें। लेकिन क्या जीवन का अर्थ यही रह गया है कि खाओ, पीयो और टी०वी० देखो। टी०वी० के रूपहले पर्दे पर दुनिया जहान की खबरें, हर तरह का मनोरंजन और जिस किसी चीज की इच्छा और कल्पना की जा सकती है, वह मौजूद है। न हमें सोचने की जरूरत है, न करने की जरूरत। टी०वी० के सामने बैठे पॉपकॉर्न खाते, च्यूइंगम चबाते हुए, हमें न तो बाढ़ और तूफान में मारे जाने वाले लोगों का दुःख सताता है और न ही द युद्ध में मारे जाने वाले निर्दोष लोगों की मौत से गुस्सा आता है। अगर हमारे घर में बिजली आ रही है, ए०सी० चल रहा है, टी०वी० पर फिल्म। मनपसंद मनोरंजन कार्यक्रम आ रहा है तो फिर सब कुछ ठीक–ठाक है।यह विचारणीय प्रश्न है ।

ये जनसंचार के माध्यम ही हैं जिन्होंने साहित्य और कला को सामान्य जन तक पहुँचाया है। चाहे वह पंचांग हो या कैसेट, टेलीविजन हो या रेडियो या फिल्म। साहित्य और कला का एकाधिपत्य और अभिजातीय स्वामित्व खत्म हो रहा है। साहित्य और कला अभिजात वर्ग के सीमित परिवेश से बाहर निकलकर आम लोगों के पास पहुँच रही है। आज रेडियो, टी०वी० उपग्रह, कैसेट, वीडियो, पेपर बैक्स आदि द्वारा टैगोर, प्रेमचंद, गालिब, रविशंकर, ओंकारनाथ ठाकुर, सुब्बालक्ष्मी, बेगम अख्तर, हरिप्रसाद चौरसिया – कितने ही नाम हैं जो देश और दुनिया के कोने–कोने में पहुँच चुके हैं। क्या यह सांस्कृतिक पतन है या सांस्कृतिक विस्तार है। प्रत्येक कलाकृति का सामाजिक पहलू होता है। उस कृति की रचना–प्रक्रिया कितनी ही निजी क्यों न हो, जब वह छपकर सामने आती है, संगीत समारोह होता है या चित्रों की प्रदर्शनी लगती है या पुस्तक को प्रकाशन या मास मीडिया द्वारा प्रसारित किया जाता है तो वह कलाकृति सामाजिक रूप धारण कर लेती है। उसे अपनी पहचान, दृष्टि और अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है और इसमें जनसंचार के माध्यमों की सक्रिय भूमिका रहती है।

जब जनसंचार के माध्यमों का प्रसार होने लगा और जनता को साहित्य एवं कला सहज सुलभ हो गई तो लोकप्रिय संस्कृति का प्रचार तेजी से होने लगा और इसी 'लोकप्रिय संस्कृति' को कला और साहित्य के उच्च उदात्त मूल्यों के ह्रास का उत्तरदायी भी माना साहित्यकारों, कलाकारों, दार्शनिक विचारकों ने और अभिजात वर्ग ने भी। यहाँ पर विचारणीय यह है कि क्या हम किसी एक ही सांस्कृतिक मूल्य को कसौटी मानकर दूसरे मूल्यों को नकार दें और क्या एकमात्र शिक्षा के प्रचार से ही उत्कृष्ट मूल्यों का विकास होता है?

मास मीडिया, समाज और संस्कृति के आलोचकों में वे बुद्धिजीवी अधिक सक्रिय हैं जो नयी टैक्नोलॉजी और इलैक्ट्रोनिक्स को मनुष्य के अस्तित्व और उसके स्वाभाविक विकास के लिए घातक समझते हैं। बुद्धिजीवी बड़ी दुविधा की हालत में है। एक ओर तो वे प्रजातंत्र की और संस्कृति के विस्तार की बात करते हैं तो दूसरी ओर वे (प्रजांतत्र) लोकप्रिय संस्कृति को जिसे जनता पसंद करती है, निकृष्ट घोषित करते हैं।

वास्तव में भूमंडलीकरण के इस दौर में जनपक्षीय ताकतें काफी कमजोर हैं। आर्थिक उदारीकरण के नाम पर बहुराष्ट्रीय नियमों का वर्चस्व राष्ट्रीय अर्थ–सत्ता पर बढ़ता जा रहा है। इसका सबसे ज्यादा असर सूचना, मनोरंजन और कंप्यूटर के क्षेत्र में दिखाई दे रहा है।

जनसंचार बच्चों, किशोरों तथा व्यस्कों के सामाजिककरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। यह अपने साहित्य और संस्कृति का बोध भी कराते हैं और जनसंचार को लोग नए प्रतिमानों का स्रोत मानते हैं। किंतु यह तो निश्चित है कि संचार नितांत रूप से प्रतिमानों के मूल स्रोत नहीं होते। परिवार, स्कूल तथा सहयोगी समुदाय अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं।

निष्कर्ष

वास्तव में विचारणीय प्रश्न अनेक हैं लेकिन यह भी सच है कि संचार के साधनों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, एक उद्योग के रूप में भी और जनता की चेतना को नियंत्रित और प्रभावित करने की दृष्टि से भी। सूचना और संचार के इस युग में मनुष्य सिर्फ उपभोक्ता बनकर रह गया है। आज मनुष्य के भौतिक, बौद्धिक श्रम एवं विवेकपूर्ण तार्किक दृष्टि तथा सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के समुचित समन्वय द्वारा हम जनसंचार के साधनों का उपयोग समाज को जागरूक बनाने, सामाजिक परिवर्तन लाने और समाज के विकास के लिए कर सकेंगे। सच्चाई यह भी है कि जनसंचार का विकास समाज के विकास का ही परिणाम है।

संदर्भ

1. वर्तमान साहित्य, अलीगढ़, अक्तूबर–2011, पृष्ठ. 8
2. संचार और विकासः श्यामचरण दुबे, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला, इन्द्रप्रस्थ प्रेस, नई दिल्ली, 1974, पृष्ठ. 27
3. जार्ज कोल रूरू राज्य की नई दुनिया समाचारपत्र के लेख और अब ई–सिनेमा 1 जनवरी, 2000, रविवारीय, पृष्ठ. 5